RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-08
August-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

"डॉ. रामविलास शर्मा का आलोचनात्मक भाषिक चिंतन"

रघुवीर शर्मा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 16 Aug 2019

Keywords
राष्ट्रवादिता, अनुष्ठान धर्मनिरपेक्षता, बहुज्ञता, संकीर्णवाद, सम्प्रदायवादी, पुनर्व्याख्या, मार्क्सवाद, विच्छिन्न, अनुषांगिक, ध्यानाकर्षण, अवधारणा।

ABSTRACT

डॉ. राम विलास शर्मा मार्क्सवाद को जन कल्याण अथवा गरीबी की शोषण से मुक्ति का माध्यम मानते है। रामविलास जी का समग्र लेखन एक सांस्कृतिक अनुष्ठान जैसा है जो भारत को शक्ति सम्पन्नता टज्ञेश्र आत्मविश्वास से भरकर उसके मनोबल को बढ़ाने वाला है। रामविलास जी की आलोचना का एक एक शब्द गेंहूँ के अमूल्य दाने की तरह है उसे अपने साहित्यिक खलियान और जीवन के खलियान में बचा कर रखने की जरूरत है। राम विलास जी ऐसे आलोचक है जो भाषा समस्या का सामना पूरी प्रतिबद्धता तथा ईमानदारी से करते है। रामविलास जी का लेखन, विशेषतः भाषा और इतिहास पर लेखन लगातार विवादों के घेरे में रहा है किंतु हिन्दी आलोचना की भाषा के निर्माण में रामविलास जी का योगदान महत्वपूर्ण है।

हिन्दी आलोचना के शिखर पुरूष तथा प्रगतिशील विचारधारा के अनन्य प्रवक्ता और भारतीय साहित्य दृष्टि के समर्थ व्याख्याकार डॉ. रामविलास शर्मा ने साहित्य आलोचना ही नहीं भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के साथ राजनीति, इतिहास, कला, भाषा तथा साहित्य के अन्य अनुशासनों पर विपुल सृजन किया है। डॉ. शर्मा ने लेखन की शुरूआत कविता के साथ की 1934 में 'चाँद' पत्रिका के लिए आलोचनात्मक लेख लिखने वाली कालजयी लेखनी साठ से अधिक वर्षों तक सक्रिय रही।"[i] डॉ. शर्मा अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव रहे तथा दो वर्ष 'समालोचक' पत्रिका का संपादन किया। "हिन्दी विद्वत–जगत में डॉ. शर्मा के बारे में एक बड़ा भारी भ्रम चलता आ रहा है कि शर्मा जी ने मार्क्सवादी दृष्टि से हिन्दी–साहित्य पर लिखा है। यदि कालमार्क्स के मुहावरे का सहारा लें तो कहना चाहिए कि इसमें यथार्थ को सिर के बल खड़ा कर दिया गया है। सच्चाई यह है कि डॉ. शर्मा ने लगभग सम्पूर्ण लेखन हिन्दी साहित्य संबंधी प्रसंगों व्यक्तियों, विषयों द्वारा मार्क्सवाद को समझाने और स्थापित करने के लिए लिखा है।"[ii] अतएव डॉ. रामविलास शर्मा के सम्पूर्ण लेखन में हर जगह व्यास अविच्छिन्न चिंता प्रगतिवाद ही है, साहित्य, इतिहास या संस्कृति नहीं। उनके लिए भाषा साहित्य, निराला, मुंशी प्रेमचंद व अंग्रेजी राज या संस्कृति मुख्य नहीं आनुषांगिक विषय थे। जैसा निर्मल वर्मा ने बिल्कुल ठीक कहा कि जहाँ महाप्राण निराला का लेखन डॉ. रामविलास शर्मा जी के मार्क्सवादी साँचे में फिट नहीं बैठता वहाँ शर्मा जी उन्हें अपने साँचे पर संदेह करने की बजाए महाप्राण निराला को ही समेट–सिकोड़ कर उस में जबरन फिट करने की कोशिश करते है।

'जहाँ तक मार्क्सवाद का प्रश्न है तो उन्होंने मार्क्सवाद को जन–कल्याण अथवा 'गरीबों की शोषण' से मुक्ति के माध्यम' के रूप में ग्रहण किया। यहाँ यह बात सबसे अधिक ध्यानाकर्षण करती है कि वे मार्क्सवाद को देशभक्ति के साधन के रूप में देखते हैं और सामन्ती साहित्य के विरोध को हर देश प्रेमी और जनवादी लेखक संघ या पाठक के लिए दिलचस्प मानते है।'[iii] रामविलास जी की साहित्य को लेकर जो दृष्टि है, साहित्य की परम्परा उसका इतिहास को जाने बिना क्या हम किसी जाति की राष्ट्रवादिता को, सांस्कृतिक मूल्यवता को ठीक से पहचान सकते हैं। आलोचना स्वयं में रचना है, यह अवधारणा डॉ. शर्मा के आलोचना साहित्य से पुष्ट और प्रमाणित होती है। किंतु आलोचना रचना तभी होती है जब आलोचक विश्लेषण की धारा में खड़े होकर अपने मूंगे–मोती जल के तल में ढूंढ निकाले। रचना के लिए सर्जक मनुष्य होना जरूरी है। डॉ. रामविलास शर्मा साहित्य की परम्परा के मूल्यांकन को आलोचना के लिए आवश्यक मानते है।[iv] रामविलास जी का समग्र लेखन एक सांस्कृतिक अनुष्ठान जैसा है जो भारत को शक्ति सम्पन्नता और आत्मविश्वास से भरकर उसके मनोबल को बढ़ाता है। उनके निष्कर्षों का लाभ कौन व्यक्ति, संस्था या दल किस तरह से उठायेंगे इसकी उन्होंने कभी परवाह नहीं की। इस बात के प्रति वे सचेत रहे कि उनका परिश्रम अनिवार्यतः भारत के मनोबल की पुष्टि करने वाला हो। दूसरी ओर जिन लोगों की दृष्टि में वामपंथी राजनीति ही सर्वस्व है वे लोग धर्म–निरपेक्षता के अस्त्र से भारत राष्ट्र की इस शक्ति और आत्मविश्वास को निरंतर क्षति पहुँचाते रहे है।

"रामविलास जी एक साहित्यिक आलोचक ही नहीं समाज चिंतक भी थे, उनमें गहरे सौन्दर्य बोध के साथ सामाजिक चेतना भी थी। उनकी आलोचना का समाज विज्ञानों से व्यापक संबंध है। यह लक्षित किया जा सकता है कि रचना की साहित्यिक श्रेष्ठता के साथ उसके सामाजिक अभिप्राय का मूल्यांकन हिंदी आलोचना का शुरू से ही एक खास गुण रहा है। रामविलास शर्मा ने इस चीज को रेखांकित करते हुए आचार्य शुक्ल के बारे में बड़ा सटीक कहा था 'उनका हृदय

RRIJM 2015, All Rights Reserved

एक बुद्धिजीवी और समाजशास्त्री का है।'[v] दरअसल आलोचना का यही काम है। आलोचना लिखने का अर्थ सर्वमान्य धारणा तैयार करना नहीं है, बल्कि प्रचलित धारणा को चुनौती देना है। रामविलास जी ने अपनी आलोचना को पश्चिमी समाज वैज्ञानिकों का उपनिवेश नहीं बनने दिया। निश्चय ही किसी भी आलोचनात्मक लेखन की महत्ता इसमें है कि अपने समय की प्रचलित धारणाओं को कितनी गहराई से चुनौती देता है। 'रामविलास जी की आलोचना का एक–एक शब्द गेहूँ के अमूल्य दाने के तरह है। उसे अपने साहित्यिक खलिहान और जीवन के खलिहान में बचा कर रखने की जरूरत है, थोड़ा फटक लीजिएँ इतना विपुल चिंतन है कि पत्थर या मिट्टी के टुकड़े हो सकते है ऐसा भी न फटकिए कि गेहूँ सारा बाहर हो जाए और सूप में कंकड़–पत्थर ही बजते रहे।[vi] एक बार किसी ने साक्षात्कार के दौरान पूछा कि डॉ. साहब आपकी सबसे बड़ी शक्ति क्या है तो उन्होंने क्या जवाब दिया है कि 'मेरी सबसे बड़ी शक्ति यह है कि मैं किसी की परवाह नहीं करता जो मुझे ठीक लगता है वह लिखता या कहता हूँ।' इस आत्मशक्ति के बिना साहित्यकार होना मुश्किल है।[vii]

रामविलास जी ने लिखा है, "साहित्य के निर्माण में प्रतिभाशाली मनुष्यों की भूमिका निर्णायक है, उसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य जो कुछ करते हैं, वह सब अच्छा ही होता है या उनके श्रेष्ठ कृतित्व में दोष नहीं होते कला का पूर्णतः निर्दोष होना भी एक प्रकार का दोष है। ऐसी कला निर्जीव होती है।"[viii] डॉ. रामविलास शर्मा जी के लेखन का बहुत बड़ा हिस्सा भाषा–चिंतन पर आधारित है। उनके कई लेख भारत की भाषा–समस्या को लेकर है। इस समस्या से डॉ. रामविलास जी जीवन भर जूझते रहे। "हिन्दी आलोचकों में भाषा–चिंतन पर काम करने वाले तो अनेक है लेकिन डॉ. रामविलास शर्मा ऐसे आलोचक है जो भाषा समस्या का सामना पूरी प्रतिबद्धता तथा ईमानदारी से करते है और अपनी समझ से उचित समाधान भी प्रस्तुत करते है।"[ix] बीसवीं सदी का भारतीय आलोचना के सबसे बड़े स्तम्भ डॉ. रामविलास शर्मा धुरंधर समाज वैज्ञानिक नहीं है, न उनका कोई 'स्पेशलाइजेशन' है। उनकी किताबों में हम पाएंगे कि विशेषज्ञता के बंद बक्से टूट गएँ उनमें इतिहास, भाषा–विज्ञान, साहित्य, समाज–विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र और कहीं कहीं संगीतशास्त्र एक–दूसरे से खेलते हुए मिलेंगे। नवजागरण से प्रेरित व्यक्तियों की बड़ी खूबी है बहुज्ञता।"[x] डॉ. रामविलास शर्मा को अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण के बावजूद थी लगता था कि "रामचरित मानस की हिन्दी क्षेत्र के लोकमानस में गहरी पैठ है। वे बताते है कि हिन्दी सीखते हुए तुलसीदास की रामायण से मेरा परिचय हुआ। दउआ (पिताजी) शाम रोटी बनाते थे, तब हमसे कहते थे लालटेन रख लो और रामायण पढ़ो।"[xi]

डॉ. रामविलास शर्मा ने आगे चलकर साहस के साथ स्वीकार किया कि "कम्युनिस्ट पार्टी के आंतरिक संघर्ष की चपेट में प्रगतिशील लेखक संघ आ गया।" इसमें संदेह नहीं कि प्रगतिशील और जनवादी साहित्यिक आंदोलनों के इतिहास में कई बार राजनीतिक संकीर्णतावाद उभरा है। इसके जवाब में साहित्यिक शुद्धतावाद उतने ही चरम पर पहुँचा है। साहित्य की क्षति राजनीतिक संकीर्णवाद और साहित्यिक शुद्धतावाद दोनों से हुई।"[xii] रामविलास जी भाषा के प्रश्नों पर लगातार विचार कर रहे थे उनके अनुसार, "हिन्दी–उर्दू की बुनियादी तौर से एक ही हिन्दुस्तानी जाति की भाषा है, हमें प्रयत्न करना चाहिए कि जिस तरह बोल चाल की भाषा का एक ही रूप है, वैसे साहित्य में इसका एक ही रूप बने।"[xiii] वह मानते हैं कि समूचे हिन्दुस्तानी प्रदेश को ध्यान में रखते हुए हिन्दी–उर्दू समस्या पर विचार किया जाय, तो ये परिणाम निकलते हैः–

1. जहाँ तक साधारण जनता की बोलचाल का संबंध है, हिन्दी उर्दू का कोई भेद नहीं है।
2. हिन्दी उर्दू का भेद लिखित भाषा के सिलसिले में उठता है।
3. उर्दू को लिखित भाषा के रूप में काम में लेने वाले लोग आमतौर पर सम्प्रदायवादी नहीं है। वास्तव में कुछ हिंदू भी लिखित भाषा के रूप में उर्दू का प्रयोग करते हैं। उर्दू का प्रयोग करने वाले सब मुसलमान ही नहीं, गैर मुसलमान भी है।
4. लिखित भाषा के रूप में जो लोग हिन्दी का प्रयोग करते है उनकी संख्या उर्दू का प्रयोग करने वालों से ज्यादा है। इसका नतीज़ा यह निकलता है कि हिन्दुस्तानी प्रदेश में 'सांस्कृतिक अल्पमत' लिखित उर्दू का प्रयोग करता है।"[xiv]

राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर रामविलास जी अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को स्थान देने के पक्षधर थे। "हिन्दी प्रेमियों का हित इस बात में है कि बंगला आदि भाषाएँ राजकाज के लिए अपने देश में पूरी तरह काम में लाई जाएँ। जब तक अहिन्दी–भाषी प्रदेशों की वहीं की भाषाएँ अपने पूर्ण अधिकार नहीं पाती, तब तक उनके बीच हिन्दी भी पूरी तरह परस्पर व्यवहार का माध्यम नहीं बन सकती।"[xv] भारतीय संविधान में हिन्दी के विकास की बात कहीं गई है। अन्य भाषाओं का उल्लेख नहीं है। इस तरह की मनोवृत्ति से भारत की विभिन्न जातियों में मैत्री और भाईचारा न बढ़ेगा। भगवान सिंह जी एक स्थान पर उल्लेख करते है कि रामविलास जी की भाषा को सरल और बोलचाल के निकट बनाए रखने के पक्षधर थे। वे बताते है कि 'राष्ट्रभाषा की समस्या कोई विशुद्ध भाषा विज्ञान की समस्या नहीं है। वह मूलतः देश की प्रभुसत्ता की समस्या है। रामविलास जी का भाषा–चिंतन का दूसरा दौर साठ के दशक से आरंभ होकर सत्तर के दशक के अंत तक चलता हैं इसकी कुछ झलक भाषा और समाज में मिलने लगती है, पर इसका सही परिचय उनके तीन खण्डों में प्रकाशित ग्रंथ 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी'

(1979–81) से मिलता है।[xvi] रामविलास जी पेशेवर भाषा विज्ञानी नहीं है। रामविलास जी की ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में प्रमुख मान्यताएँ इस प्रकार हैः–

1. भाषा परिवार की अवधारणा पर्याप्त है।
2. भाषाओं का विकास सांस्कृतिक प्रक्रिया से अभिन्न रूप से जुड़ा रहता है और कोई भी भाषा दूसरी भाषाओं के सम्पर्क में आने पर उनके साथ भाषाई तत्वों का आदान–प्रदान करती है। इसलिए शुद्ध भाषा या मूल भाषा जैसी कोई चीज नहीं होती।
3. भाषा में नियम जैसी कोई चीज नहीं होती चाहे वह ध्वनि के नियम हों या रूप या विन्यास के। इनकी कुछ प्रवृतियाँ होती है। किन्हीं दो भाषओं या किसी एक ही भाषा के दो चरणों के विषय में नियम निर्धारित करना तो दूर, किसी एक भाषा के एक ही चरण के विषय में भी कोई अकाट्य नियम नहीं बनाया जा सकता।
4. भारत में पाए जाने वाले भाषा समूह जिन्हें भाषा–परिवारों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, बहुत प्राचीन काल से भारत में विद्यमान हैं और इन सभी का विकास एक दूसरे से प्रभावित हुआ है।
5. इन परिवारों मे आर्य और द्रविड़ समुदाय की भाषाओं का संबंध इतना गहरा है कि अनेक मामलों में यह तय करना लगभग असंभव है कि कोई तत्व मूलतः किसका है और किसने दूसरे से उधार लिया है।
6. इण्डोयूरोपियन या भारोपीय भाषा–परिवार का विकास एक ऐसे स्तर तक हो जाने के बाद जब उसका ध्वनितंत्र उस रूप में विकसित हो चुका था, इसका प्रसार क्रम में आर्य भाषा के साथ भारतीय आर्येत्तर भाषाओं के तत्वों का भी निर्यात हुआ।
7. इस भाषा का विकास केन्द्र मध्यदेश था। बाहर को फैली भाषा में इस क्षेत्र से दूरी के अनुसार ही इसके प्रधान लक्षण क्षीण होते जाते हैं या उनमें अनियमितता बढ़ती जाती है।
8. इंडोयूरोपियन भाषाओं के अध्ययन के लिए भरतीय बोलियाँ भी मूल्यवान हैं क्योंकि इनमें उस प्राथमिक चरण के अनेक लक्षण विद्यमान है जिससे संस्कृत का भी विकास हुआ था। कुछ मामलों में इनके तत्व बीस–पच्चीस हजार वर्ष पुराने हो सकते है।
9. भाषाओं का अध्ययन उनके अर्थ विकास की उपेक्षा करके नहीं किया जा सकता। भाषा केवल ध्वनि नहीं है, सार्थक ध्वनियों के घटकों का संयोजन है। अर्थ विकास का भी अध्ययन यांत्रिक रूप में नहीं किया जाना चाहिएँ अर्थ एक भूभौतिक परिवेश में विकसित होता है और इसलिए शब्दों में उस परिवेश की छाया होती है।
10. रामविलास जी मानते है कि पाणिनी का व्याकरण विधेयात्मक व्याकरण नहीं यह विवरणात्मक भी है। विधेयात्मक होना एक विवशता है। इसके साथ ही वह छठी शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक भारत में विवरणात्मक भाषा विज्ञान की परम्परा का उल्लेख मिलता है।

भाषा परिवारों की अवधारणा के हिमायती स्वयं अपने विवेचन में इसे खंडित होते पाते है। भाषा के इतिहास की जाँच के लिए और दो भाषाओं की तुलना के लिए कम से कम दो भाषाओं की तुलनीय अवस्थाओं के सटीक समकालिक विवरण का होना अपरिहार्य है।"[xvii] इसी तरह भाषा परिवारों के विषय में रामविलास जी लिखते है कि भाषा परिवारों का निर्माण एक सुदीर्घ प्रक्रिया है।

रामविलास जी का लेखन, विशेषतः भाषा और इतिहास पर उनका लेखन लगातार विवादों के घेरे में रहा है। विवाद उनकी निष्पतियों को लेकर भी चलते रहे है और उनकी स्थापनाओं की समाजर्थिक परिणति को लेकर भी उनकी कृति भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश को लेकर भी बहुत से सवाल उठाए गए और उठाए जा सकते हैं। उनकी सभी स्थापनाओं से सहमत होना ना समझी है और उनको खारिज करना दुर्भाग्यपूर्ण।[xviii] रामविलास जी के चिंतन और सरोकार का एक सिरा हिन्दी प्रदेश की एकता से जुड़ा हुआ और दूसरा सुदूर अतीत से अब तक के विकास से।[xix] हिन्दी प्रदेश की रामविलास जी की उद्भावना नहीं है। इसके पीछे कई हजार साल का लम्बा इतिहास है।"[xx] परंतु रामविलास जी को कुछ प्रश्नों पर भ्रमित सा पाया जाता है। अंतर दृष्टिकोण का नहीं ज्ञानावस्था का है वह आर्य जाति की बात कुछ इस तरह करते है जैसे आज से पचास साल पहले की जाती थी, "मजे की बात यह है कि आर्य जानते थे कि दो पत्थरों से टकराने से भी अग्नि पैदा होती है।"[xxi] रामविलास जी का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक और वैज्ञानिक था पद समूचे हिंदी प्रदेश को एक राज्य में गठित करने का सुझाव उतना ही अव्यावहारिक लगता है जितना अवैज्ञानिक। ऐसा न तो पूरे इतिहास में कभी संभव हुआ, न ही प्रशासनिक दृष्टि से संभव है। हिन्दी जाति की चेतना को न तो झुठलाया जा सकता है न ही अपनाया जा सकता है। इसकी अपनी समस्याएँ आज पहले से विकट हो चुकी है।

यह ध्यान देने की बात है कि रामविलास की मार्क्सवादी आलोचक होते हुए भी जड़ मार्क्सवादी की तरह आलोचना कर्म में प्रवृत नहीं हेाते। उनकी 'आस्था और सौन्दर्य' पुस्तकें इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय पुस्तक है।[xxii] हिन्दी आलेचना के इतिहास में अन्य शुक्लोतर आलोचकों की तरह रामविलास शर्मा के भी प्रस्थान बिन्दु आचार्य शुक्ल ही है, किन्तु उनसे रामविलास शर्मा इस बात में भिन्न है कि उन्होंने आचार्य शुक्ल का विरोध करने के स्थान पर उनके विचारों की पुष्टि करते हुए उनका पुर्नव्याख्या और साथ ही युगानुरूप

विस्तार भी किया।[xxiii] डॉ. शर्मा ने आगे बढ़कर कहा कि "हिन्दी साहित्य में शुक्ल जी का वहीं महत्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का है।"[xxiv] पुनर्मूल्यांकन यदि आलोचना के प्रमुख कार्यों में से एक है तो रामविलास शर्मा ने निश्चय ही हिन्दी साहित्य के अनेक प्रमुख लेखकों का पुनर्मूल्यांकन किया और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मुंशी प्रेमचन्द, महाप्राण निराला तथा आचार्य शुक्ल जैसे चार महारथियों की पूर्ण समीक्षा लिखकर एक तरह से आधुनिक हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध आलोचनात्मक इतिहास ही लिख दिया।[xxv] हिन्दी आलोचना का भाषा के निर्माण में रामविलास शर्मा का योगदान महत्वपूर्ण है। शास्त्रीय दुरूहता से मुक्त बोलचाल के पारदर्शी गद्य में जटिल से जटिल बात को सुलझाकर कहने की कला में डॉ. रामविलास शर्मा बेजोड़ है। उनके हाथों आलोचना जन–सामान्य के लिए भी पठनीय बन सके।

निष्कर्ष

हिन्दी आलोचना के शिखर पुरूष डॉ. रामविलास शर्मा भारतीय इतिहास दृष्टि व भाषा विज्ञान के मूर्धन्य विद्वान है, रामविलास जी को आलोचना के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। डॉ. रामविलास शर्मा एक साहित्यिक आलोचक ही नहीं समाज चिंतक भी थे। रामविलास जी ने अपनी आलोचना का पश्चिमी समाज वैज्ञानिकों का उपनिवेश नहीं बनने दिया। डॉ. रामविलास शर्मा को अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण के बावजूद भी लगता था, रामचरित मानस की हिन्दी क्षेत्र के लोकमानस में गहरी पैठ है। तथा राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर रामविलास जी अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को स्थान देने के पक्षधर थे। इस सम्पूर्ण आलेख में उनके भाषा–सम्बन्धी विचारों का आलोचनात्मक दृष्टिकोण है।

सन्दर्भ सूची

i समकालीन भारतीय साहित्य, (द्वैमासिक पत्रिका, अंक 167, मई–जून 2013) पृ.सं. 5
ii साक्षात्कार (पत्रिका) अक्टूबर–नवम्बर, 2005, पृ.सं. 59
iii आचार्य रामचंद शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रामविलास शर्मा, पृ.सं. 27
iv साक्षात्कार (पत्रिका) अक्टूबर–नवम्बर, 2005, पृ.सं. 156
v रामविलास शर्मा, शंभूनाथ सिंह, पृ.सं. 21
vi वही, पृसं. 26
vii वही, पृसं. 25
viii वही, पृसं. 25
ix भाषा साहित्य और जातीयता, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.सं. 12
x रामविलास शर्मा, शंभूनाथ सिंह, पृ.सं. 21
xi अपनी धरती : अपने लोग, खंड–1, रामविलास शर्मा, पृ.सं. 37
xii रामविलास शर्मा, शंभूनाथ सिंह, पृ.सं. 15
xiii वही, पृ.सं. 14
xiv हिन्दी उर्दू समस्या, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.सं. 59
xv साक्षात्कार पत्रिका, अक्टूबर–नवम्बर अंक, 2005, पृ.सं. 74
xvi वही, पृसं. 75
xvii वही, पृसं. 76
xviii प्राचीन भारत के इतिहासकार, डॉ. भगवान सिंह, पृ.सं. 72
xix वही, पृसं. 72
xx वही, पृसं. 73
xxi भारतीय संकृति और हिन्दी प्रदेश (खण्ड–1) डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.सं. 31
xxii हिन्दी आलोचना का दूसरा पाठ, डॉ. निर्मला जैन, पृ.सं. 88
xxiii वही, पृसं. 88
xxiv वही, पृसं. 89
xxv वही, पृसं. 92

RRIJM 2015, All Rights Reserved